विपक्षी एकता की राह में चुनौतियां

राहुल वर्मा

विपक्षी दलों में व्यापक विविधता और उनके हितों को देखते हुए उन्हें एक छतरी के तले लाना असंभव तो नहीं, किंतु अत्यंत कठिन कार्य अवश्य है

अवधेश राजपूत

आज तीन राज्यों के विधानसभा चुनाव नतीजों के साथ ही अगले आम चुनाव की भी एक तरह से उलटी गिनती शुरू हो गई है। ऐसे में स्वाभाविक है कि विभिन्न राजनीतिक दलों ने अपनी तैयारियां भी तेज कर दी हैं। कुछ समय पहले भाजपा की राष्ट्रीय कार्यकारिणी आयोजित हुई तो हाल में कांग्रेस का महाधिवेशन संपन्न हुआ। दोनों दलों ने अपने इन आयोजनों में अपनी रीति-नीति की कुछ झलकियां पेश कीं। इस बीच विपक्षी एकता के प्रयास भी तेज हुए हैं। निश्चित रूप से प्रमुख विपक्षी दल कांग्रेस ही इन प्रयासों के केंद्र में है। हालांकि पार्टी के रवैये से कुछ दुविधा दिखाई दे रही है। एक ओर वह विपक्षी एकता के लिए 'कोई भी कीमत अदा करने के लिए तैयार' होने की बात करती है तो दूसरी ओर नीतीश कुमार जैसे सहयोगियों के संदेश के जवाब में तंज भी कसती है। कांग्रेस यही दावा करती रही है कि भाजपा के विरुद्ध किसी भी राजनीतिक गोलबंदी की कवायद उसके बिना मुश्किल है। यह बात सही है कि अखिल भारतीय उपस्थिति और सबसे पुरानी पार्टी होने के नाते कांग्रेस विपक्षी एकता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी, फिर भी विपक्षी एकता का प्रश्न बहुत जटिल है। इसकी राह में आ रही बाधाओं के लिहाज से हमें चार पहलुओं पर दृष्टि डालनी होगी।

सबसे पहला तो यही कि कुछ क्षेत्रीय दल ऐसे हैं जिन्हें कांग्रेस के नेतृत्व में कोई समस्या नहीं और वे वर्तमान में भी पार्टी के साथ मिलकर काम कर रहे हैं। जैसे झारखंड में झामुमो और तमिलनाडु में द्रमुक। दोनों ही जगह कांग्रेस राज्य सरकार में कनिष्ठ सहयोगी बनी हुई है। यहां गठबंधन में वरिष्ठ दलों का कांग्रेस से सीधा मुकाबला नहीं है तो किसी प्रकार की तल्ख राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता या असुरक्षा का मुद्दा गौण हो जाता है। महाराष्ट्र में राकांपा और उद्धव ठाकरे की पार्टी को भी ऐसे ही दलों की श्रेणी में रखा जा सकता है। दूसरा पहलू जदयू और राजद जैसे उन दलों से जुड़ा हुआ है, जो कांग्रेस के पाले में हैं तो, लेकिन कुछ किंतु-परंतु के साथ। तीसरा पहलू सपा, बसपा और जनता दल-सेक्युलर जैसे दलों से जुड़ा है, जिनके साथ कांग्रेस ने अतीत में गठबंधन किया, पर वह विशेष चुनावी लाभ में रूपांतरित नहीं हो पाया। चौथा पहलू कांग्रेस के लिहाज से बेहद जटिल है, क्योंकि यहां पेच बीजद, भारत राष्ट्र समिति और तृणमूल कांग्रेस जैसे उन दलों के साथ फंसता है, जिनका अपने राजनीतिक गढ़ में कांग्रेस से सीधा मुकाबला है। वहीं आम आदमी पार्टी जैसे दल भी हैं जो स्वयं को राष्ट्रीय परिदृश्य में कांग्रेस के विकल्प के रूप में प्रस्तुत करने की रणनीति पर काम कर रहे हैं।

ऐसे में यह कहना गलत नहीं होगा कि विपक्षी दलों में व्यापक विविधता और उनके हितों को देखते हुए उन्हें एक छतरी के तले लाना असंभव तो नहीं, किंतु अत्यंत कठिन कार्य अवश्य है। वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य में भाजपा के विरुद्ध किसी केंद्रीय महागठबंधन को कम से कम तीन कसौटियों पर खरा उतरना होगा। सबसे पहली कसौटी तो एक साझा न्यूनतम कार्यक्रम या वैचारिक आधार की होगी। अभी तो यही स्थिति है कि विपक्षी दल विशेषकर कांग्रेस मुख्य रूप से प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी पर निशाना साध कर या उन पर निजी हमले करके ही राजनीतिक बढ़त बनाने में लगे हैं, लेकिन यह रणनीति पहले भी फलदायी सिद्ध नहीं हुई है। इसके बजाय महंगाई, बेरोजगारी और बढ़ती असमानता जैसे रचनात्मक मुद्दे कहीं ज्यादा प्रभावशाली हो सकते हैं। यदि विपक्ष बढ़ती असमानता जैसे किसी मुद्दे पर ही कुछ ठोस दलीलें रख पाए तो सरकार के विरोध में सार्थक राजनीतिक विमर्श गढ़कर अपने पक्ष में माहौल बना सकता है, जिसका अभी अभाव दिखता है। महागठबंधन के लिए दूसरी कसौटी यही है कि उसके केंद्र में एक प्रमुख दल और सर्वस्वीकार्य नेतृत्व आवश्यक है। निःसंदेह कांग्रेस विपक्ष में सबसे बड़ी पार्टी है, मगर उसके नेतृत्व को लेकर विपक्षी खेमे में संदेह है। इस समय कांग्रेस के सबसे बड़े नेता राहुल गांधी ने 'भारत जोड़ो यात्रा' से राजनीतिक मोर्चे पर ऊंची छलांग लगाई है, लेकिन प्रतीत होता है कि उनका नेतृत्व पूरे विपक्षी खेमे को अभी भी स्वीकार्य नहीं। उनकी यात्रा से भी कई प्रमुख दलों ने दूरी बनाए रखी और केवल औपचारिक शुभकामना संदेश के जरिये एकजुटता का प्रदर्शन किया। ऐसे में नेतृत्व और स्वीकार्य चेहरे का संकट बना हुआ है।

इस कड़ी में तीसरी कसौटी होगी संसाधनों को जुटाने और उनके साझा उपयोग की। यदि महागठबंधन आकार लेता है तो सीटों के बंटवारे और टिकट वितरण जैसे उलझाऊ मुद्दों को सुलझाने की चुनौती भी उत्पन्न होगी। अन्य विपक्षी दलों की ओर से कांग्रेस पर दबाव बनाना भी शुरू हो गया है कि उसे केवल 200 लोकसभा सीटों पर चुनाव लड़ना चाहिए और बाकी सीटें अन्य दलों के लिए छोड़ देनी चाहिए। क्या कांग्रेस इतनी बड़ी राजनीतिक कुर्बानी के लिए तैयार होगी। इन सभी प्रश्नों के उत्तर ही केंद्रीय स्तर पर महागठबंधन की नियति को तय करेंगे। यदि विपक्षी एकता की राह में इन चुनौतियों से पार भी पा लिया गया तो क्या ऐसा कोई महागठबंधन भाजपा को मात देने में सफल हो सकेगा या नहीं। कुछ राज्यों में भाजपा और कांग्रेस में सीधा मुकाबला है और यहां कांग्रेस का प्रदर्शन बेहतर न होने से भाजपा को बढ़त मिलती है और विपक्षी ताकत कमजोर पड़ जाती है। उत्तर-पश्चिम भारत में फिलहाल भाजपा के बढ़ते दबदबे का भी कांग्रेस को कोई तोड़ निकालना होगा। किसी संभावित महागठबंधन को लेकर एक व्यावहारिक प्रश्न यह भी खड़ा होता है कि ऐसी कोई पहल अगर विधानसभा चुनाव में सफल हो जाए तो आवश्यक नहीं कि लोकसभा चुनाव में भी उसे उतनी ही सफलता मिलेगी। उत्तर प्रदेश से लेकर बिहार, महाराष्ट्र और कर्नाटक जैसे इसके तमाम उदाहरण हैं और ये ऐसे राज्य हैं जहां लोकसभा की अधिकांश सीटें हैं। फिर प्रधानमंत्री मोदी की निजी लोकप्रियता की काट तलाशना भी विपक्ष के लिए आसान नहीं होगा। यदि विपक्ष इन सभी उलझनों को सुलझाने में सफल रहता है तभी व्यापक विपक्षी एकता की किसी मुहिम को सफलता मिल सकती है।

(लेखक सेंटर फार पालिसी रिसर्च में फेलो हैं)
response@jagran.com